हम कैसी दुनिया चाहते हैं ?

•दिनेश कर्नाटक

अभी हम दिल्ली में दिसम्बर' 12 में घटित हुए दामिनी दुष्कर्म को भूला भी नहीं पाये थे कि पांच वर्ष की गुड़िया के साथ हुए बर्बर अनाचार ने सब को एक बार पुनः दहला कर रख दिया। इसके साथ ही एक बार फिर से घर-परिवार, समाज-संस्कृति, परंपरा-आधुनिकता तथा राज-व्यवस्था को लेकर लोगों के बीच में बहस होने लगी है। कोई इस घटनाक्रम के लिए मां-बाप के ढीलेपन को जिम्मेदार ठहरा रहा है, कोई बढ़ती हुई अपसंस्कृति तथा परंपरा से दूर होने को इसका कारण मान रहा है तो कोई इसके पीछे व्यवस्था की नाकामी को देख रहा है। गुस्से और जल्दबाजी में लोग न जाने कैसे-कैसे निष्कर्ष निकाल रहे हैं। हद तो तब हो जा रही है, जब कई लोग इसके लिए स्त्री को ही दोषी ठहरा दे रहे हैं।

क्या बच्चों को संवेदनशील तथा सुसंस्कृत बनाने की जिम्मेदारी सिर्फ मां-बाप, परिवार तथा समाज की है या इसमें राज्य की भी कोई भूमिका बनती है ? बेशक मां-बाप, परिवार तथा समाज की भूमिका तो है ही, लेकिन सबसे बड़ी भूमिका राज्य की है। राज्य की नीतियों से तय होता है कि वह बच्चों को कैसा नागरिक बनाना चाहता है? उन्हें किस दिशा की ओर ले जाना चाहता है? क्या हमारी राज-व्यवस्था बच्चों की चिन्ता कर रही है? क्या उन्हें सुसंस्कृत तथा जिम्मेदार नागरिक बनाने की दिशा में वह कोई गंभीर पहल कर रही है ? शायद नहीं, क्योंकि जिस देश में मुट्ठी भर लोगों ने तमाम संसाधनों पर कब्जा जमाकर, तीन चौथाई लोगों को घुट-घुटकर जीने या दो जून की रोटी के लिए लुटेरा बनने को मजबूर कर दिया हो। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर बेरोकटोक सैक्स परोसा जा रहा हो। उस देश के कुंठित किशोर और युवा अगर बलात्कारी होते जाएं तो इस पर आश्चर्य नहीं होता।

हमारा संविधान एक धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक, समाजवादी गणराज्य की परिकल्पना करता है। क्या व्यवहार में भी ऐसा हो रहा है ? सच तो यह है कि हमारे हुक्मरानों ने इस देश में ईमानदारी से लोकतांत्रिक समाजवाद को लाने की कभी कोशिश ही नहीं की। यह काम शिक्षा से शुरू होना था। सभी वर्गों के बच्चों के लिए समान शिक्षा को लागू करके हम यह कार्य कर सकते थे। ऐसा क्यों हुआ कि आजादी से पहले जिस माल रोड और कांन्वेंट स्कूल में कुत्ते तथा भारतीयों के प्रवेश की अनुमति नहीं थी। आजादी के बाद वह माल रोड तो सभी के लिए खुल गयी, मगर वे स्कूल पूर्ववत देश पर कब्जा जमाए हुए भारतीय अंग्रेजों के बच्चों के लिए हो गंये। उनका गेट उसी दिन से समान रूप से सभी वर्गों के बच्चों के लिए क्यों नहीं खोला गया ?

इस सूत्र के सहारे हमारे शासकों

की कथनी और करनी के अंतर को समझा जा सकता है। अब तो इस देश में यह सभी का शगल बन चुका है कि कहो कुछ और करो कुछ। यह 'कहो कुछ और करो कुछ' इस तरह हमारी राजनीतिक जमात पर हावी होता गया कि आखिरकार देश की जनता को सूचना का अधिकार, सेवा का अधिकार तथा लोकपाल की जरूरत महसूस होने लगी और ऐसा लगने लगा गोया ये अधिकार मिलते ही हमारे जीवन में नयी रोशनी बिखर उठेगी। मजा यह कि इसी 'देन-दिवाई' के दौर में सरकार शिक्षा का अधिकार देने का दावा करती है और लोग भी सोचते हैं कि उनके बच्चों को शिक्षा का अधिकार मिल चुका है। जबकि गहराई से देखने पर यह शिक्षा के अधिकार का नहीं, शिक्षा व्यवस्था को जटिल बनाने तथा पहले से मिले हक को छीनने और देश में भेदभाव को बढ़ाने वाला अधिकार है।

ऐसे में सवाल उठना लाजिमी है कि हमारी राजव्यवस्था किस ओर को जा रही है, उसकी चिन्ता और सरोकार क्या हैं ? हम सब जानते हैं कि उसकी सबसे बड़ी चिन्ता अब शेयर बाजार में उछाल तथा विकास दर है। उसका यकीन लाभ कमाने में है, भले ही वह अनियंत्रित दोहन के जरिए क्यों न हो ? ऐसी अर्थव्यवस्था के बारे में ज्योतिष जोशी कहते हैं- 'जिस अर्थव्यवस्था में अधिकाधिक लाभ कमाने की धुन होगी, वह नैतिक....मानवीय नहीं हो सकती। उसके कारण भ्रष्टाचार फैलेगा। मनुष्य की जगह पैसे की प्रभुता स्थापित होगी और पूरा समाज धन-संचय में अपनी अर्थवत्ता गंवा बैठेगा।'

इस दौर में संस्कृति पर भी खूब बातचीत हो रही है। वे लोग जो सबसे अधिक भ्रष्ट तथा भौतिक सुख-सुविधाओं को भोगते हैं, वे ही सबसे अधिक संस्कृति रूदन भी करते हैं। क्या संस्कृति व्यक्ति के रीति-रिवाजों, परंपरा, परिधान तथा भाषा तक ही सीमित है? या इसका कुछ और अर्थ भी है ? कई बार संस्कृति को लेकर ऐसी जिद के कारण हमें अपने बारे में पता भी नहीं चल पाता और हम सुसंस्कृत होने के बजाय परंपरावादी अथवा रूढ़िवादी मनुष्य में बदल चुके होते हैं। संस्कृति अपने व्यापक अर्थ में सार्वभौमिक जीवन मूल्यों के प्रति निष्ठा, सृजन तथा जीवन के प्रति प्रगतिशील जिजीविषा है। यह उन्नत सांस्कृतिक चेतना ही है, जिसके कारण मनुष्य भाषा, आग तथा पहिये की खोज कर पाया। अगर सही सांस्कृतिक चेतना नहीं होगी तो संस्कृति हमारे जीवन में घातक भूमिका भी निभा सकती है। इसे सीधे-सरल लोगों के तालिबानीकरण तथा भगवाकरण के उदाहरणों से भी समझा जा सकता है।

क्या थोड़ा सा भाषा, थोड़ा सा विज्ञान, थोड़ा बहुत गणित तथा थोड़ा बहुत सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लेना ही शिक्षा है ? हमारे वहां के अधिकांश अभिभावकों के लिए शिक्षा, बच्चे के जवान होने पर उसे बेहतर रोजगार के लिए तैयार करने की तैयारी मात्र है। बच्चा भाषा, विज्ञान, गणित, भूगोल, अंग्रेजी को जानने-समझने के लिए नहीं पढ़ रहा है, बल्कि उन्हें सीढ़ी के रूप में इस्तेमाल कर रहा है। वह परीक्षाओं को पास करने के लिए उनमें दक्षता प्राप्त करता है। क्या शिक्षा का यही उद्देश्य है ? नहीं, शिक्षा न तो परीक्षाओं के लिए होनी चाहिए, न रोजगार के लिए। शिक्षा ऐसी हो जो बच्चों में नये ज्ञान के निर्माण की क्षमता पैदा कर सके। शिक्षा आनंद के लिए होनी चाहिए। शिक्षा आदमी से मनुष्य के रूपांतरण के लिए होनी चाहिए। शिक्षा प्रगतिशील सांस्कृतिक चेतना के निर्माण के लिए होनी चाहिए। शिक्षा को मनुष्य को रटन्तू तोता बनाने के बजाय स्वतंत्र विश्लेषण में सक्षम बनाना चाहिए। शिक्षा को रोजगार की चिन्ता के बजाय विद्यार्थी को भयमुक्त बनाना चाहिए। शिक्षा को बच्चों को श्रम का आदर करना सिखाना चाहिए ताकि उसे रोजगार की चिन्ता न हो और वह आगे जाकर कोई भी कार्य कर सके।

मगर हमारी शिक्षा कैसी है ? यह भेदभावपूर्ण है तथा व्यक्ति की क्रय शक्ति पर निर्भर करती है। अपने परिवेश की भाषा में न होने के कारण रटन्तू प्रणाली पर आधारित है। विद्यालय ज्ञान के झरने होने के बजाय ज्ञान के तालाब हैं। हमारी गुलाम मानसिकता का हाल यह है कि हम अभी तक अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों को चलाए हुए हैं। हमारे बच्चे अपनी भाषाओं में पढ़ नहीं सकते। कमाल की बात तो यह है कि कॉन्वेंट स्कूलों ने वेशभूषा का तो भारतीयकरण कर दिया है, लेकिन जुबान का नहीं। ऐसे में हमारे कई शिक्षक साथियों को यह खुशफहमी रहती है कि अगर हम मेहनत से काम करें तो तस्वीर बदल सकती है। इस सोच में ही गड़बड़ है। सच तो यह है कि काम मेहनत से नहीं आनंद से किया जाना चाहिए, जबकि दुर्भाग्य यह है कि यह व्यवस्था किसी को आनंद में देख नहीं सकती।

तो क्या हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली एक बेहतर संस्कृति के निर्माण के साथ शिक्षा को मानवीय तथा संवेदनशील बनाने में कोई भूमिका निभा रही है। जवाब होगा, नहीं ! शिक्षा बच्चों को आपस में प्रतियोगी होने की सीख दे रही है, उनके ऊपर दबाव डाल रही है कि उन्हें किसी भी तरह कामयाब होना होगा। कामयाबी का अर्थ है, बड़ी कार तथा बड़ा घर ! इस तरह शिक्षा अपसंस्कृति, अराजकता, स्वार्थ, भोग, मूल्यहीनता को ध्वस्त करने के बजाय उन्हें पुष्ट करने में लगी हुई है। ऐसे में सवाल उठना लाजिमी है कि क्या हम ऐसी ही शिक्षा और संस्कृति चाहते हैं ? क्या हम ऐसी ही दुनिया चाहते हैं ?

●●●